
इकाई 8 अधिकार और नागरिकता

इकाई की रूपरेखा

- 8.0 उद्देश्य
- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 नागरिकता क्या है?
 - 8.2.1 नागरिकता और व्यक्तिवाद
 - 8.2.2 नागरिकता और बहु-संस्कृतिवाद
- 8.3 भारतीय संविधान में नागरिकता
 - 8.3.1 भारत के नागरिक कौन हैं?
 - 8.3.2 भारतीय नागरिकता में सम्प्रदाय को मान्यता
 - 8.3.3 राज्य-नीति के निदेशक सिद्धांत
 - 8.3.4 अधिकार और मताधिकार
 - 8.3.5 नागरिकता के कर्तव्य
- 8.4 नागरिकता में तनाव
 - 8.4.1 नागरिकता और लिंग
- 8.5 नागरिकता की राहें
- 8.6 सारांश
- 8.7 शब्दावली
- 8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

भारतीय संविधान अधिकार और नागरिकता के विषय में विवरण देता एक विस्तीर्ण दस्तावेज है। इस इकाई को पढ़ चुकने के बाद आप नागरिकता के वैध-रीतिक पहलुओं को समझ सकेंगे जैसे कि वे भारतीय संविधान के भाग-II में समाविष्ट हैं। इसे संविधान के भाग-III, IV व IVA के साथ, जो क्रमशः मौलिक अधिकारों, निदेशक सिद्धांतों व मौलिक कर्तव्यों पर हैं, पढ़कर आप नागरिकता के स्वभाव को पूरी तरह से समझ सकेंगे जैसा कि संविधान-निर्माताओं द्वारा समझा गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप स्पष्ट कर सकेंगे:

- नागरिकता का अर्थ;
- भारत में नागरिकता का विशिष्ट स्वभाव;
- भारत के संविधान में नागरिकता और अधिकार;
- नागरिकता के तत्त्व;
- नागरिकता की राहें;
- नागरिकता के विरोधाभास/तनाव और आलोचनाएँ।

8.1 प्रस्तावना

नागरिकता विषयों और प्रश्नों की एक शृंखला प्रस्तुत करती है नामतः, नागरिकता क्या है? क्या यह कोई कानूनी पदवी है जो कुछ निश्चित अधिकारों के उपभोग की स्वीकृति देती है अथवा इसमें कर्तव्य और उत्तरदायित्व भी शामिल हैं? नागरिकता के मूल सिद्धांत क्या हैं? एक नागरिक कौन है? नागरिकता और राज्य के बीच क्या संबंध है? ये व अन्य प्रश्न उसके सारभाग-केन्द्र में रहे हैं जिसे 'नागरिकता का सिद्धांत' कहा जा सकता है। यह भली-भाँति समझ लिया जाना चाहिए कि जहाँ नागरिकता समानता सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखती है, लिंग, वर्ग, जाति, प्रजाति, राष्ट्रीयता आदि की सामाजिक-आर्थिक श्रेणियाँ यह निर्धारित करती हैं कि किस सीमा तक हम नागरिकता के अपने अधिकारों का उपभोग कर सकते हैं, अपने व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास के लिए अनिवार्य विभिन्न शर्तों तक पहुँच सकते हैं, आगे वह सीमा भी जहाँ तक हम नागरिकता के अपने कर्तव्यों का पालन कर सकते हैं। जहाँ तकनीकी उन्नति और भूमण्डलीकरण विश्व और राज्यों के भीतर के लोगों को समीपतर ले आए हैं, उनके बीच सांस्कृतिक भेदों के प्रति जागरूकता भी बढ़ रही है। विश्व में राष्ट्र-राज्यों के बीच और लिंग, वर्ग, जाति, न जाति, राष्ट्रीयता आदि की सीमा-रेखाओं के साथ-साथ उनके भीतर असमानता से संबंधित महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए गए हैं। जहाँ व्यक्ति इस सोच के साथ ही बड़ा होता है कि नागरिकता व्यक्तिगत अधिकारों व कर्तव्यों का पालन भर है, यह धारणा बढ़ रही है कि सांस्कृतिक/धार्मिक सम्प्रदाय, आम राष्ट्रीय जीवन में भागीदारी निभाते हुए, अपनी निजी संस्कृतियों को कायम रखने का अधिकार भी रखते हैं। नागरिकता के अधिकारों को इसीलिए, विशिष्ट सांस्कृतिक समूहों की आवश्यकताओं की जिम्मेदारी लेनी पड़ती है। साम्प्रदायिक अधिकारों के प्रश्न इस प्रकार नवीन प्रज्ञता और नीति-निर्णयों में काफी महत्व अर्जित कर चुके हैं। अन्य पाठांशों की ओर बढ़ते समय हमें यहाँ उठाए गए प्रश्न दिमाग में आवश्यक रखने चाहिए नामतः, व्यक्ति और सम्प्रदाय अधिकारों के प्रश्न और वे विभिन्न कारक जो अधिकारों के उपभोग को निश्चित करते हैं, अन्य शब्दों में, जाति, वर्ग, लिंग, न जाति व राष्ट्रीय पहचान से नागरिकताओं का संबंध।

8.2 नागरिकता क्या है?

नागरिकता की शायद सर्वाधिक व्यापक रूप से स्वीकृत परिभाषा है - 'एक राजनीतिक समुदाय में पूर्ण और समान सदस्यता'। यह परिभाषा अंग्रेज समाजशास्त्री टी.एच. मार्शल द्वारा 1949 में लिखी गई उनकी पुस्तक *सिटीज़नशिप एण्ड सोशल क्लास* में दी गई है। इस परिभाषा के तात्त्विक मूल यूनानी और रोमन संकल्पनाओं - *मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रूप में* और नागरिकता शासन करने और शासित होने के रूप में - में तलाशे जा सकते हैं। जबकि पहली राजनीतिक समुदाय (शहर-राज्य) में सक्रिय भागीदारी की आवश्यकता वाले नागरिक (केवल मुक्त जन्मजात-जन्मे मनुष्यों हेतु प्रतिबन्धित) के रूप में एक मनुष्य की पहचान प्रदान करने वाली पूर्व-श्रेष्ठता की द्योतक है, रोमन परम्परा ने नागरिकता की धारणा को कानून के समक्ष समानता का संकेत देती एक कानूनी/न्यायिक पदवी के रूप में प्रस्तुत किया। जनता की लोकप्रचलित सभाओं में (सभाएँ व समितियाँ) भागीदारी निभाती निर्णय लेने की अपनी अनूठी व्यवस्था के साथ प्राचीन भारत के जनपद जो कुछ दृष्टांतों में राजा भी चुनते थे, यूनानी नागरिकता के घटक-तत्त्वों से इस बात में सम्बद्धता दर्शाते हैं कि दोनों ही समुदाय के प्रशासन में नागरिकों की सक्रिय भागीदारी की आवश्यकता वाले स्वायत्त, स्व-शासी समुदायों से जुड़े हैं।

8.2.1 नागरिकता और व्यक्तिवाद

यह, तथापि, फ्रांसीसी क्रांति और 'मनुष्य और नागरिकों के अधिकारों की घोषणा' थी जिसने उन सभी निर्णयों के लेने में भागीदारी के हकदार एक 'मुक्त और स्वायत्त व्यक्ति' के रूप में नागरिक के द्योतन को, उसके द्वारा नागरिकता के पारम्परिक द्योतनों को व्यक्तिवाद से मिलाते हुए, स्थापित किया जिनकी आज्ञा-पालन में आवश्यकता होती है। उन्नीसवीं शताब्दी में पूँजीवादी विपणन संबंधों के विकास और उदारवाद के बढ़ते प्रभाव के साथ, निजी व परस्पर विरोधी हितों के साथ व्यक्तियों के रूप में नागरिकों के द्योतन ने धीरे-धीरे पूर्व-श्रेष्ठता प्राप्त कर ली। एक प्राथमिक रूप से नगरीय गतिविधि, जन-स्फूर्ति और समकक्षों के एक समुदाय में सक्रिय राजनीतिक भागीदारी के रूप में नागरिकता के विचार अब बीते काल के तादीयत्व के रूप में देखे जा रहे थे।

8.2.2 नागरिकता और बहु-सांस्कृतिकवाद

बीसवीं सदी के अधिकांश वर्षों तक उदारवादी सिद्धांत के अधिकतर में, व्यक्तिवादी नागरिक के पक्ष में पूर्वाग्रह जारी रहा और नागरिकता अधिकारों के स्वामित्व का संकेत करती उस कानूनी पदवी के रूप में देखी गई जो प्रत्येक नागरिक अन्यो के साथ समान रूप से रखता था। नागरिकता के प्रबल उदारवादी आदर्श की हालाँकि, इन्हीं आधारों पर असंदिग्ध आलोचना हुई है। यह विचार कि (प्रत्येक) नागरिक अधिकारों का उपभोग कर सकता है चाहे वह किसी भी समुदाय से सम्बन्ध रखता/रखती हो, प्रश्नों के घेरे में रहा है। माना कि आधुनिक समाज बहु-सांस्कृतिक हैं, नागरिकों के विशिष्ट प्रसंग, सांस्कृतिक, धार्मिक, न जातीय, भाषायी, इत्यादि, सार्थक तरीकों से नागरिकता निश्चित करने के रूप में देखे जा रहे हैं। अधिकांश पाश्चात्य समाजों में न जातीय, धार्मिक व प्रजातीय समुदायों ने उन अधिकारों के लिए दबाव डाला है जो उनकी विशेष आवश्यकताओं पर विचार करे और उसके द्वारा नागरिकता की औपचारिक समानता को प्रमाणित करे। लोगों के बीच सांस्कृतिक भेदों को उचित महत्त्व देकर नागरिकता को पुनःपरिभाषित करने और देश के नागरिक को एक सार्वजनिक राजनीतिक पहचान बनाते हुए बहुसंख्यक सांस्कृतिक, धार्मिक, न जातीय, भाषायी पहचानों के बीच एक संतुलन कायम करने का प्रयास बढ़ रहा है। 'विभेदीकृत नागरिकता' के द्योतन ने इसीलिए विशिष्ट सांस्कृतिक समूहों की आवश्यकताओं के समायोजन हेतु लोकप्रियता हासिल कर ली है।

8.3 भारतीय संविधान में नागरिकता

इस पाठांश में हम भारत में नागरिकता की परिभाषा, प्रकृति और कार्यक्षेत्र का अध्ययन करेंगे। 26 जनवरी 1950 को संविधान के प्रवर्तन ने भारत के लोगों की सामाजिक स्थिति का एक महत्त्वपूर्ण विभेदीकरण किया। वे अब अंग्रेजों के अधीन नहीं थे, बल्कि भारत गणराज्य के नागरिक थे और उन्होंने यह स्थिति उस संविधान से व्युत्पन्न की थी जो उन्होंने भारत की 'जनता' के रूप में अपनी सामूहिक क्षमता से (संविधान सभा में अपने 'प्रतिनिधियों' के माध्यम से) अधिनियमित, अंगीकार की थी और स्वयं को सौंपा था। प्रस्तावना में निर्विवाद है – अपने सभी नागरिकों के लिए न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा – वे आदर्श सुनिश्चित करना, जो नागरिकता को वास्तविक अर्थ प्रदान करने हेतु आधार निश्चित करते हैं।

8.3.1 भारत के नागरिक कौन हैं?

संविधान के भाग-II (अनुच्छेद 5 से 11), शीर्षक *नागरिकता*, ने 26 नवम्बर 1949 को, यानी जिस तिथि को संविधान उस संविधान सभा द्वारा अंगीकृत किया गया, संविधान के प्रारंभ होने के

समय 'भारत का नागरिक कौन है?' प्रश्न का उत्तर दिया है। जबकि संविधान पूरे प्रभाव में 26 जनवरी 1950 को ही आया, नागरिकता से जुड़े प्रावधान (अनुच्छेद 5 से 9), इसके प्रारंभ होने की तिथि से ही लागू हो गए। भारतीय नागरिक और अनागरिक (विदेशी) के बीच अंतर इस प्रकार इस तिथि से प्रभावी हो गया। जबकि एक नागरिक कुछ निश्चित अधिकारों का उपभोग और कर्तव्यों का पालन करता/करती है जो उसे एक विदेशी से अलग करते हैं, दूसरे के पास 'वैयक्तिकता' के निश्चित अधिकार हैं जिनपर इस तथ्य पर कोई ध्यान दिए बगैर उसका स्वामित्व है कि वह एक नागरिक नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 5 से 8 से तहत लोगों की निम्नलिखित श्रेणियाँ संविधान के प्रारंभ होने की तिथि से भारत की नागरिक बन गईं:

- क) वे अधिवासी और भारत में जन्मे हैं;
- ख) वे अधिवासी जो भारत में नहीं जन्मे, लेकिन उसके माता-पिता में से कोई एक भारत में जन्मा था;
- ग) वे अधिवासी जो भारत में ही जन्मे, लेकिन पाँच वर्ष से अधिक से भारत में सामान्यतः निवासी हैं।
- घ) वे भारत में निवासी, जो 1 मार्च 1947 के बाद पाकिस्तान प्रवास कर गए थे और बाद में पुनर्वास अनुज्ञा पर लौटे;
- ङ) वे पाकिस्तान में निवासी, जो 19 जुलाई 1948 से पूर्व भारत में आप्रवासी थे अथवा वे जो उसके बाद आए लेकिन 6 माह से अधिक रहे और अपना पंजीकरण कराया;
- च) वे जिनके माता-पिता और दादा-दादी भारत में जन्मे लेकिन भारत से बाहर रह रहे थे।

अनुच्छेद 11 के माध्यम से संविधान ने अपने प्रारंभ में ही संसद को नागरिकता के उपार्जन और अवसान से संबंधित कानूनों को बनाने हेतु प्राधिकृत कर दिया। नागरिकता अधिनियम (1955 का LVII) ने इस बात का विशेष उल्लेख करते हुए विस्तृत प्रावधान रखे कि नागरिकता किस प्रकार जन्म, वंशज, पंजीकरण, नागरिकीकरण अथवा भू-भाग के सम्मिलन द्वारा अर्जित की जा सकती है। यह अधिनियम 1986 में संशोधित हुआ ताकि बंगलादेश, श्रीलंका और कुछ अफ्रीकी देशों से वृहद्-स्तर पर प्रवासन पर कार्यवाही की जा सके। संयुक्त राज्य अमेरिका (यू.एस.ए.) से भिन्न, जहाँ नागरिकों के पास दोहरी नागरिकता है – राष्ट्रीय नागरिकता और उस संघीय इकाई (राज्य) की, भारतीयों के पास राज्यों की अलग नागरिकता नहीं है। कुछ देशों से भिन्न, जो अपने नागरिकों को एक ही वक्त दो देशों की नागरिकता रखने की स्वीकृति देते हैं, एक भारतीय नागरिक अपनी नागरिकता खो देता/देती है यदि वह किसी अन्य देश की नागरिकता प्राप्त कर लेता/लेती है।

8.3.2 भारतीय नागरिकता में सम्प्रदाय को मान्यता

पूर्व पाठांश में हमने चर्चा की कि नागरिकता का द्योतन जैसा कि उन्नीसवीं सदी में प्रचलित था और उसके बाद समझा गया, वृहद् रूप से अधिकारों और दायित्वों की एक ऐसी व्यवस्था थी जिसने राज्य-राष्ट्रों और उनके वैयक्तिक सदस्यों के बीच संबंध को परिभाषित किया। इस संबंध को परिभाषित करते मानदण्ड समानता और स्वतंत्रता द्वारा स्थापित किए गए। समानता ने विशिष्टता और एकरूपता को परोक्ष रूप से प्रजाति और जाति के आरोपित अधिक्रमण पर आधारित अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं के विरुद्ध बताया। तब समानता के साथ स्वतंत्रता का अर्थ होता – अपनी भरपूर पारिस्थितिक क्षमताओं से वैयक्तिक लक्ष्यों और महत्वाकांक्षाओं की प्राप्ति-प्रयास हेतु ऐसी स्वतंत्रता जहाँ सामाजिक भेद अस्वीकार अथवा न्यूनतम कर दिए गए हों। उदारवादी सिद्धांत में नागरिक इस

प्रकार अपने सामाजिक संदर्भ के सभी लक्षणों से वंचित 'चलायमान व्यक्ति' था/थी। यहाँ, यद्यपि, ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है कि नागरिकता को परिभाषित करते ये सिद्धांत उस प्रकार के सामाजिक संबंधों से मेल खाते नहीं देखे गए जो गैर-पाश्चात्य समाजों में विद्यमान थे, जैसे भारत, जहाँ धर्म और जाति सामाजिक जीवन के आधार के रूप में देखे जाते थे। पश्चिम और पूर्व में सामाजिक संरचनाओं के संगठन में यह तथाकथित 'भेद' उपनिवेशकों द्वारा उपनिवेशित जनता को साम्राज्यिक शासन के अधीन करने के लिए औचित्य-साधन के रूप में लिया गया। हमने यह भी देखा कि अस्सी के दशक में उदारवादी सिद्धांत उत्तरोत्तर रूप से पश्चिम में बहु-सांस्कृतिक समाजों में स्वयं को समायोजित करने के तरीकों की तलाश में है और यह बोध किया कि समुदाय सदस्यता उस वैयक्तिक सदस्य की आवश्यकताओं और क्षमताओं के एक महत्वपूर्ण निर्णायक कारक का रूप ले लेती है।

भारतीय नागरिकों के मौलिक अधिकारों की गणना करते भारतीय संविधान के भाग-III का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि व्यक्ति और समुदाय, दोनों ही को इन अधिकारों का विषय बनाया गया है। इसीलिए यह कहा जा सकता है संविधान में अधिकारों की दो भाषाएँ अस्तित्वपरक हैं, एक वैयक्तिक नागरिक को समझती है और दूसरी समुदाय को। सामान्यतः अनुच्छेद 14 से 24 वैयक्तिक नागरिकों को समानता और स्वतंत्रता के विभिन्न अधिकार देते जान पड़ते हैं जबकि अनुच्छेद 25 से 30, धार्मिक-सांस्कृतिक समुदायों की विशिष्ट आवश्यकताओं को समझते लगते हैं। कुछ गहराई से पढ़ने पर ये अनुच्छेद, यद्यपि, दर्शाएँगे कि वास्तव में यहाँ कोई खाना-विभक्तिकरण नहीं है और स्पष्टतः कुछ वैयक्तिक-समझवाले अधिकार समुदाय अधिकारों के प्रति वचनबद्धता के साथ गुंथे-बुने हैं। यदि, उदाहरण के लिए, हम अनुच्छेद 14 व 15 पर नज़र डालें तो पाएँगे कि ये प्रत्येक नागरिक हेतु कानून के समक्ष समानता का आश्वासन देते हैं और जाति, धर्म, प्रजाति आदि पर आधारित भेद को प्रतिबंधित कर, इस प्रकार सामाजिक परिस्थितियों द्वारा प्रदत्त भेदों को प्रशामित करते हुए, इस समानता को सुदृढ़ करते हैं। ये अनुच्छेद, यद्यपि, राज्य के लिए सामुदायिकता के प्रति वचनबद्धता, दूसरे शब्दों में, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व अन्य पिछड़े वर्गों के पक्ष में निश्चित अधिकार प्रदान करने की शर्त रखते हैं। इस प्रकार अनुच्छेद 15 व्यवस्था देता है कि 'राज्य किसी भी नागरिक से केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, जन्म-स्थान अथवा इनमें किसी भी आधार पर भेद-भाव नहीं बरतेगा' और उपबन्ध-4 में राज्य के लिए इस अधिकार हेतु शर्त रखता है कि 'वह नागरिकों के सामाजिक तथा शैक्षिक रूप से पिछड़े किन्हीं भी वर्गों की उन्नति अथवा अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष प्रावधान रखे।' इसी प्रकार अनुच्छेद 16 जो सार्वजनिक रोज़गार के मामलों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता का वचन देता है, निश्चित समुदायों के पक्ष में प्रतिकारी विवेक हेतु भी व्यवस्था देता है।

अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता, अनुसूचित जातियों पर उन्हें दुर्बल करती एक स्थिति, का उन्मूलन करता है। अनुच्छेद 25 से 30 अपने को धर्म की स्वतंत्रता और अन्तःकरण की स्वतंत्रता, धार्मिक संस्थानों को स्थापित करने व उनका अनुरक्षण करने तथा 'धर्म के विषयों में अपने निजी मामलों को संचालित करने', सम्पत्ति का अर्जन और प्रबंध करने, धार्मिक शिक्षा प्रदान करने, अपनी भाषा, लिपि, संस्कृति आदि को बनाए रखने का आश्वासन देते अल्पसंख्यक अधिकारों से जोड़ते हैं। यह अधिकार-समूह सुव्यक्त रूप से धार्मिक व सांस्कृतिक समुदायों तथा अल्पसंख्यक समूहों के अधिकारों से व्यवहृत है और यह उनके लिए अपने निजी 'वैयक्तिक कानूनों' द्वारा नागरीय मामलों में स्वयं प्रबंध करने हेतु धार्मिक समुदायों के अधिकारों का आधार भी बनाता है। इस अधिकार-समूह में एक महत्वपूर्ण कारक भारतीय राज्य को प्रदत्त वह कार्यक्षेत्र है जिसमें वह इन समुदायों व संस्थानों का नियंत्रण, सुधार और कुछ मामलों में प्रबंध कर सकता है।

इस प्रकार, जबकि उदारवादी सिद्धांत का (वैयक्तिक) नागरिक अधिकारों के एक विषय के रूप में डटा है, संविधान व्यक्तियों के जीवन की परिस्थितियों को निर्धारित करती एक सुसंगत सामूहिक इकाई के रूप में समुदाय को महत्त्व देता है। भारत संविधान ने इस प्रकार नागरिकों के बीच विभेदन के लिए समुदाय सदस्यता को एक सम्बद्ध विचाराधार बनाया है। इसने इस प्रकार एक 'विभेदीकृत-नागरिकता' की प्रस्तावना की है ताकि निश्चित किया जा सके कि वे समुदाय (उदाहरणार्थ, अनुसूचित जातियाँ अथवा दलितजन) जो अतीत में सामाजिक विभेदीकरण के शिकार रहे और अलाभान्वित ही रहे, शेष समाज के साथ समान रूप से प्रतिस्पर्धा कर सकें। सामाजिक समानता को भी यह आश्वासन देते हुए दृढ़ता प्रदान की गई कि जबकि प्रत्येक समुदाय के सांस्कृतिक रूप से भिन्न होने के दावों का परिरक्षण किया जा सकता है, उसी के साथ समुदायों के बीच एकरूपता अथवा समानता का आश्वासन हो। अपनी सांस्कृतिक विरासत के अनुरक्षण हेतु विभिन्न समुदायों के अधिकारों को अतः संविधान में मान्यता प्रदान की गई और राज्य को अभेदीकरण का वचन देना था। इस प्रकार, सामाजिक और धार्मिक समुदायों को सांस्कृतिक रूप से भिन्न रहने का अधिकार दिया गया और उनकी भिन्नता के परिरक्षण में राज्य को सहायता करनी थी। यही, सामाजिक समानता के चोटन की भी अपेक्षा थी कि ऐतिहासिक अशक्तता की प्रतिपूर्ति की जाए और अवसरों की समानता का आश्वासन देकर समानता को सुदृढ़ किया जाए। इस प्रकार अतीत के विभेदीकरण और संपृथकन की प्रतिपूर्ति जातीय समुदायों को राज निकाय में समान नागरिकों के रूप में शामिल करके की गई। इस समानता का आश्वासन उन्हें पारिस्थितिक अशक्तताओं से उबरने हेतु विशेष प्रावधान देकर दिया गया। सार्वजनिक रोजगार में आरक्षण की नीति पर इसीलिए विचार किया गया। (गुरप्रीत महाजन, *आइडेण्टिटीज़ एण्ड राइट्स : एसपैक्ट्स ऑव लिबरल डिमोक्रेसी इन इण्डिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998, अध्याय - इण्ट्रोडक्शन : निगोशिपेंटिंग डिफरेंसिस विद्इन लिबरलिज़्म)।

8.3.3 राज्य-नीति के निदेशक सिद्धांत

संविधान के भाग-IV, शीर्षक 'राज्य-नीति के निदेशक सिद्धांत', में निश्चित गैर-न्यायिक अधिकारों को दिया गया है। ये अधिकार, पूर्व पाठांश में दिए गए अधिकारों से भिन्न, न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं, लेकिन विधि-निर्माण हेतु अनुस्मारकों वा निदेशकों के रूप में हैं, उन शर्तों का उद्घाटन करने हेतु जिनके तहत पिछले पाठांश में परिगणित अधिकार अधिक सार्थक हो जाते हैं। पिछले ही पाठांश की भाँति, यद्यपि, इस पाठांश में भी अधिकार 'सामुदायिक-ता' और 'नागरिक-ता', दोनों ही के प्रति, दूसरे शब्दों में, समुदाय और वैयक्तिक नागरिक, दोनों ही के प्रति, एक 'युगपत् वचनबद्धता' दर्शाते हैं। अनुच्छेद-38, उदाहरणार्थ, राज्य को यह वचन देने का निर्देश देता है कि एक ऐसी 'सामाजिक व्यवस्था' को प्रोत्साहित कर 'लोगों के कल्याण को बढ़ावा दे' जिसमें 'न्याय, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक, राष्ट्रीय जीवन के सभी संस्थानों को सूचित करे'। इसकी प्राप्ति के लिए राज्य को कहा गया है कि 'आय की असमानताओं को कम-से-कम कर देने हेतु प्रयास करे' और यह भी कि 'पद, सुविधाओं और अवसरों में असमानताओं को दूर करे'। महत्त्वपूर्ण अनुस्मारक, बहरहाल, यह है कि इस न्याय और समानता को 'न सिर्फ व्यक्तियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले अथवा विभिन्न व्यवसायों में लगे लोगों के समूहों के बीच भी उपलब्ध कराना है'। इसी प्रकार अनुच्छेद 46 राज्य को आदेश देता है कि 'वह लोगों के कमजोरतर वर्गों, और विशेषतः अनुसूचित जातियों व जनजातियों, के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष जिम्मेदारी के साथ बढ़ावा दे' और 'उनकी सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के उत्पीड़न से रक्षा करे'। साधारणतया ये निदेशक सिद्धांत जीवन-यापन के पर्याप्त साधन; समान कार्य के लिए समान वेतन; कर्मचारियों की तंदरुस्ती व शक्ति; कर्मचारियों की निर्वाह-मज़दूरी; कार्य-शर्तों के न्यायोचित व मानवोचित प्रावधान; काम से शिक्षा के जन-सहयोग के समान न्याय के अधिकार; और मप्त कानूनी सहायता तक

पहुँच से लेकर पर्याप्त पोषण व स्वास्थ्य आदि तक सामाजिक रूप से उत्कर्षक अथवा कल्याणकारी अधिकारों की एक शृंखला की व्यवस्था करने में राज्य की एक सक्रिय भूमिका की कल्पना करते हैं।

निदेशक सिद्धांतों का अनुच्छेद 44 राज्य को आदेश देता है कि 'वह भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र में सभी नागरिकों के लिए एक समान-व्यवहार संहिता सुनिश्चित करे'। इस अनुच्छेद पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है क्योंकि यह उसका परिसंपुटन करता है जिसका जिक्र हम वैयक्तिक और सामुदायिक अधिकारों के प्रति संविधान की 'युगपत् वचनबद्धता' के रूप में पहले ही कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त, यह उन तनावों में एक वातायन प्रस्तुत करता है जो नागरिकता, और कुछ स्थितियों में, खासकर नारी-अधिकारवादियों द्वारा, उसकी आलोचना को सूचित करते हैं। निम्नलिखित पाठांश में हम इस अनुच्छेद और इसके निहितार्थों को विस्तार से समझेंगे।

8.3.4 अधिकार और मताधिकार

संविधान के इन भागों में दिए गए प्रावधानों के अलावा, उसके अन्य खण्ड भी उन प्रावधानों में यहाँ-वहाँ दिए गए हैं जो नागरिकता को दृढ़ता प्रदान करते हैं। औपनिवेशिक, शासन के तहत राजनीतिक अधिकारों के वंचन के लम्बे इतिहास के प्रसंग में 'चुनावों' और 'मताधिकार' से संबंधित प्रावधान खासतौर पर महत्त्वपूर्ण हैं। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि संविधान ने लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनावों में 'सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार' को आधार बनाया। संविधान के अनुच्छेद 326 ने 21 वर्ष की आयु से (1 अप्रैल 1989 से प्रभावी, यह 61वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1988 द्वारा बदलकर 18 वर्ष कर दी गई) ऊपर सभी नागरिकों को मत देने का अधिकार प्रदान किया। यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है कि संविधान ने सम्पत्ति और शिक्षा की कोई कसौटी नहीं रखी। महिलाओं को भी, जो अधिकतर पश्चिमी देशों में केवल वर्तमान सदी में ही मताधिकार सम्पन्न थीं, पुरुषों के साथ समान आधार पर मताधिकार-सम्पन्न बनाया गया।

8.3.5 नागरिकता के कर्तव्य

नागरिकता और अधिकारों के संवैधानिक प्रावधानों पर अभी तक जो चर्चा हुई उससे यह विश्वास होने लगता है कि नागरिकता सिर्फ एक कानूनी पदस्थिति है जो यह परिभाषित करती है कि भारत के नागरिक कौन हैं और उनके अधिकार अथवा वे शर्तें जिनमें इन अधिकारों का उपभोग किया जा सकता है, क्या हैं। विद्वजनों का एक पनपता निकाय, यद्यपि, यह विश्वास करता है कि पदस्थिति के रूप में इस प्रकार का वैध-वैधानिक वैचारीकरण 'नागरिक कौन है' प्रश्न का केवल अंशतः उत्तर देता अधिक-से-अधिक अनुकूल स्थिति में एक निष्क्रिय द्योतन है। वे चाहते हैं हम उन 'आधारिक संरचनाओं' (समानता और सामाजिक न्याय की) से परे निकल चलें जो कि संविधान स्थापित करने के प्रयास में है, ताकि नागरिकता के द्योतन पर हम एक 'उत्तरदायी' भागीदारी की प्रक्रिया के रूप में भी ध्यान केन्द्रित कर सकें। नागरिकता तब, एक सक्रियता का भी गुण बनने के लिए अपने निष्क्रिय संकेतार्थ से उबरकर आगे निकल जाएगी। एक राष्ट्रीय समुदाय से सम्बद्ध नागरिक होने का भावाधार, तब उत्तरदायित्व की उन प्रवृत्तियों और सद्गुणों से आएगा जो उसे एक 'उत्तम' नागरिक के रूप में पहचान देंगे। उत्तरदायी भागीदारी फिर इन विभिन्न सामाजिक स्थितियों में खुद-ब-खुद व्यक्त होगी, नामतः राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, नृजातीय, वा धार्मिक पहचानों के प्रच्छन्न प्रतियोगितापूर्ण रूपों में नागरिक क्या दृष्टिकोण रखते हैं और कैसा आचरण करते हैं; अपने से भिन्न लोगों को सहन करने और उनके साथ मिलकर काम करने की उनकी कुशलता; लोकहित को बढ़ावा देने और राजनीतिक प्राधिकारियों की जवाबदेही तय करने हेतु राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी करने की उनकी इच्छा; खुद के स्वास्थ्य और पर्यावरण आदि को प्रभावित करने वाली अपनी आर्थिक माँगों और व्यक्तिगत विकल्पों में आत्म-संयम और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व दर्शाने की

2) संविधान ने व्यक्तिगत और व्यक्तिगत अधिकारों को संतुलित करने का किस प्रकार प्रयास किया है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) गैर-न्यायिक अधिकार क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8.4 नागरिकता में तनाव

इस बात पर अक्सर ध्यान आकर्षित किया जाता रहा है कि आर्थिक और सामाजिक न्याय के आदर्शों द्वारा सम्पूरित और वृद्धिकृत प्रस्तावना, मौलिक अधिकार और निदेशक सिद्धांत स्वतंत्रता और समानता के मूल्य को मूर्त रूप प्रदान करते हैं। विभिन्न मोर्चों से आती आलोचनाएँ, यद्यपि, इस ओर ध्यान दिलाती हैं कि भारतीय संविधान में नागरिकता का स्वभाव और जिस भाँति यह गत वर्षों में प्रकट हुआ है, ने यह दर्शाया है कि स्वतंत्रता और समानता के मूल्य बड़े भ्रामक हैं। संविधान के अंतर्गत नागरिकों की शक्तिसम्पन्नता के स्वभाव का अध्ययन करते हुए, ए.आर. देसाई, एक मार्क्सवादी विद्वान, संविधान में अधिकारों के संदिग्ध स्वभाव की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। वह जोर देकर कहते हैं कि लोगों के लिए अधिकार न सिर्फ अनारक्षित हैं, उनको पहले से प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों के लिए भी सुरक्षा नहीं है। संविधान स्वयं ही राज्य द्वारा उनके संशोधन और अवहेलना किए जाने को अनुमति देता है और प्रक्रिया सुझाता है। इसके अलावा, निदेशक सिद्धांत लोगों को सम्बोधित नहीं हैं, जिसका अर्थ है कि लोग उन शर्तों के पालन हेतु सरकार को निर्देश दिए जाने के लिए न्यायालय नहीं जा सकते जिनके तहत उनके अधिकार और अधिक सार्थक बनाए जा सकते थे।

पुनः, देसाई निश्चयपूर्वक कहते हैं, जबकि राज्य के लिए उत्तरदायित्व की यहाँ कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं दिखाई पड़ती, लोगों को कुछ 'मौलिक कर्तव्य' सौंप दिए गए हैं। देसाई यह अनुभव करते हैं कि राज्य के लिए इस प्रकार की किसी बाध्यता के अभाव में, मौलिक कर्तव्यों से संबंधित प्रावधान नागरिकों के मौलिक अधिकारों का संक्षेपण करते हैं। अन्ततः, यह तथ्य कि काम, आश्रय, शिक्षा व चिकित्सा सुविधाओं जैसे निश्चित बुनियादी हक मौलिक अधिकार नहीं हैं, संविधान-निर्माताओं के वर्ग और लिंग पूर्वाग्रहों को दर्शाता है। इस प्रकार की परिस्थितियों के अधीन 'मुश्किल से गुजारा

करते, उन नागरिकों का एक बड़ा वर्ग जो सामाजिक व आर्थिक रूप से, महिलाओं समेत, अल्प-लाभावित हैं, उन दशाओं में रहने को बाध्य है जिनमें नागरिकों के रूप में उनकी शक्तिसम्पन्नता अपरिणत ही रही है।

8.4.1 नागरिकता और लिंग

महिलाओं के नागरिकता अधिकारों से मुत्तल्लिक एक खास कमी इस तथ्य में समाहित है कि महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव के उन्मूलन से संबंधित एक निर्णायक प्रावधान, शर्तें जिनमें महिलाओं द्वारा यथेष्ट नागरिकता अधिकारों का उपयोग किया जा सकता है, केवल निदेशक सिद्धांतों के रूप में सूचीबद्ध है। अनुच्छेद 39, उदाहरण के लिए, व्यवस्था देता है कि राज्य निम्नलिखित को 'सुनिश्चित करने की दिशा में अपनी नीतियाँ' बताएगा : (अ) कि नागरिक, पुरुष और महिलाएँ समान रूप से, जीवन-यापन के एक पर्याप्त साधन का अधिकार रखते हैं; और (ब) कि पुरुषों और महिलाओं, दोनों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन है। यद्यपि न्यायालयों ने समान कार्य के लिए समान वेतन दिए जाने हेतु कुछेक मामलों में हस्तक्षेप किया है, महिलाओं के लिए वास्तविक आर्थिक समानता भ्रान्तिजनक ही रही है।

कानूनी रूप से भी, महिलाएँ अनेक अशक्तताओं का सामना करती हैं। राज्य को 'नागरिकों के लिए भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र में एक समान-आचरण संहिता सुनिश्चित करने' का सुझाव देते निदेशक सिद्धांतों के अनुच्छेद 44 के प्रावधान हाल के वर्षों में फोकस में रहे हैं। विभिन्न महिला समूहों ने माँग की है कि यह निदेश विवाह, दहेज़, तलाक, मात पितृत्व, अभिभावकता, अनुरक्षण, उत्तराधिकार, दाय्याधिकार आदि से संबंधित मामलों में महिलाओं की गौण स्थिति को सुधारने के लिए लागू किए जाएँ, जोकि वर्तमान में विशिष्ट धार्मिक सम्प्रदायों के 'निजी कानूनों' द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। यद्यपि महिला-समूहों के बीच मतभेद हैं, उन्होंने कुल मिलाकर, लिंग-संगत नियमों की एक व्यवस्था की माँग की है जो उन्हें अपनी अन्तःशक्ति को नागरिकों के रूप में साकार करने में मदद करे।

8.5 नागरिकता की राहें

आरंभ में हमने नागरिकता को एक ऐसे समुदाय में 'पूर्ण' और 'समान' सदस्यता के रूप में परिभाषित किया, जो कि आधुनिक प्रसंग में राष्ट्र-राज्य के रूप में समझा जाता है। हम देख चुके हैं कि सामाजिक/आर्थिक संदर्भ (जाति, लिंग, वर्ग, धर्म) वे महत्त्वपूर्ण कारक हैं जो इस सीमा को निर्धारित करते हैं जहाँ तक कि कोई व्यक्ति इस 'पूर्ण' और 'समान' सदस्यता को चरितार्थ कर सकता है। संविधान, जैसा हमने देखा, दौर्बल्योन्मुखी परिस्थितियों को दूर कर अथवा सक्षमोन्मुखी दशाएँ प्रदान कर, जनता के सभी वर्गों के लिए उक्त की परिणति सुनिश्चित करने का वचन देता है। पूर्व पाठांश ने, यद्यपि, यह भी दर्शाया कि किसी भी प्रदत्त क्षण, नागरिकता के कार्यान्वयन में परस्पर विसंगत अथवा समूहों के विरोधी गुट में भी, वर्ग, लिंग, धर्म, जाति आदि द्वारा मध्यस्थता की जाती है। राज्य स्वयं नागरिकता के कार्यान्वयन हेतु संसाधन उपलब्ध कराने के वायदे से चूक सकता है और वैकल्पिक रूप से, वह अपने संस्थाओं के माध्यम से नागरिक अधिकारों के प्रति आक्रामक और उल्लंघनकारी रुख भी अख्तियार कर सकता है। इसका, बहरहाल, यह मतलब नहीं है कि नागरिकता एक निश्चल श्रेणी है। पदानुक्रम और आरोप्य असमानताओं के विरुद्ध समानता के एक सिद्धांत के रूप में नागरिकता के उद्गम के इतिहास ने यह दर्शाया है कि नागरिकता हमेशा से एक संघर्षों की पच्चीकारी रही है। जन-आंदोलन ऐतिहासिक रूप से नागरिकता अधिकारों की संवृद्धि हेतु प्रेरक रहे हैं। पश्चिमी देशों में मताधिकार आंदोलन महिलाओं के लिए वोट देने का

अधिकार प्राप्त करने में सफल हुए। विश्व-व्यापी कर्मचारी आंदोलनों ने औद्योगिक कर्मचारियों के लिए कार्य-समयावधि निर्धारण, कार्य-दशा सुधार और कल्याणकारी कदमों की दिशा में योगदान दिया है। नागरिकता को पुनर्परिभाषित करने अथवा उसकी सीमाएँ बढ़ाने के प्रयास में लोकप्रचलित आंदोलनों और संघर्षों की एक शृंखला भी भारत में जब-तब रही है। उनमें लगभग सभी की जड़ें स्थानीय स्थितियों में थीं लेकिन मुद्दे जो उन्होंने उठाए कहीं और भी उठाए गए इसी प्रकार के मुद्दों से जुड़े थे और, इन्होंने कहीं अधिक लोगों को विचारोत्तेजित किया। महिला-आंदोलन, दलित-आंदोलन, पर्यावरण आंदोलन, कृषक आंदोलन आदि न सिर्फ उस तरीके को प्रकाशित करते हैं जिनसे नागरिकता क्षयग्रस्त होती है बल्कि उनका नागरिक-अधिकारों के तात्पर्य और स्वभाव की परिभाषा पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव है। सरकार सरोवर बाँध के निर्माण के विरुद्ध नर्मदा घाटी के लोगों द्वारा किए जा रहे संघर्ष, उदाहरण के लिए, सरकार के हाथों उनको हाशिये पर धकेल दिए जाने के विरुद्ध प्रतिकार करने के अधिकार हेतु नर्मदा घाटी के लोगों के दावों पर प्रकाश डालते हैं। इस संघर्ष के मूलाधार में, यद्यपि, घाटी के लोगों द्वारा अपनी पहचान, अपना इतिहास, अपनी संस्कृति व जीवकोपार्जन के साधनों को छोड़ देने का वह अविरोधी इंकार भी है जो वे इस क्षेत्र में एक स्व-पोषित समुदाय के रूप में जीवन बिताते पीढ़ियों से प्राप्त कर लाए हैं। यह संघर्ष इस प्रकार राज्य की विकास-नीतियों द्वारा लोगों के अधिकारों का अपरदान रोकने की अभिलाषा रखता है और उन सामाजिक प्रतिबंधों के प्रावधान की माँग भी करता है जो उनके अधिकारों को सार्थकता प्रदान करें।

अनेक सरकारी संस्थानों ने भी नागरिक-अधिकारों के कार्य-क्षेत्र को विस्तृत करने की दिशा में वर्षों योगदान किया है। हाल के वर्षों में सर्वोच्च न्यायालय ने गैर-सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) अथवा संबद्ध व्यक्तियों द्वारा लाए गए सामाजिक कार्यवाही वाद (एस.ए.एल.)/ जन-हित वादों (पी.आई.एल.) का सकारात्मक रूप से प्रत्युत्तर नागरिक-अधिकारों में कई पहलू जोड़ते हुए दिया है। न्यायालयों के फैसलों ने नानाविध तरीकों से कुछेक हाशिये के तबकों को अधिकारों के दायरे में लाने हेतु नागरिकता के द्योतन को बढ़ावा भी दिया है। सत्तर के दशक के उत्तरार्ध से, उदाहरण के लिए, सर्वोच्च न्यायालय ने कैदियों के लिए प्रचलित कानूनी अभिवृत्ति को बदल डाला है ताकि उन्हें 'उनकी दण्डाज्ञा की शर्तों द्वारा स्पष्ट रूप से छीन लिए गए अधिकारों के सिवा, स्वतंत्र नागरिकों द्वारा उपभोग किए जाने वाले शेष सभी अधिकार' मिलें। (चाल्सर्स शोभराज बनाम अधीक्षक, केन्द्रीय कारागार, तिहाड़, ए.आई.आर., 1978, एस.सी., 1514)।

इसी प्रकार, एक संसदीय अधिनियम (राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990) के तहत, 1992 में गठित, राष्ट्रीय महिला आयोग ने विस्तृत क्षेत्र वाली अन्वेषी व अनुशांसा-शक्तियों के माध्यम से स्वयं को संविधान के अंतर्गत महिला अधिकारों से संबंधित मसलों से और महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक दशाओं, स्वास्थ्य व उनके प्रति हिंसा की समस्याओं से संबद्ध रखा है। गत वर्षों यह आयोग महिलाओं के प्रति हिंसा, यंत्रणा व उत्पीड़न के मामलों (छेड़छाड़, बलात्कार, दहेज-संबंधी हिंसा, हिरासत में बलात्कार और मौत, परिवार के भीतर, कार्य-स्थल पर यंत्रणा और उत्पीड़न समेत), और अन्वेषण और उद्धार हेतु महिलाओं के कानूनी और राजनीतिक अधिकारों के मुद्दों पर व्यस्त रहा है। लोगों के अधिकारों के उल्लंघनों की जाँच हेतु एक संसदीय अधिनियम (राष्ट्रीय मानवाधिकार अधिनियम, 1993) द्वारा स्थापित एक अन्य संस्था 'राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग' है। अपने प्रभावशाली रूप से उपयोग अथवा लोगों के दबाव द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग जैसी संस्थाएँ नागरिकता को प्रमाणित करने की दिशा में योगदान दे सकती हैं।

बोध प्रश्न 2

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

- 1) महिलाओं व अन्य अल्प-लाभावित वर्गों के नागरिकता अधिकारों से संबंधित भारतीय संविधान की मुख्य सीमाबद्धताएँ क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

- 2) राष्ट्रीय महिला आयोग और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग जैसे संस्थान हमारे नागरिकता अधिकारों की संवृद्धि में किस प्रकार मदद करते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8.6 सारांश

भारतीय संविधान वैयक्तिक नागरिक और समुदाय दोनों को ही अधिकार प्रदान करता है। यह इस प्रकार स्वतंत्र और समान (वैयक्तिक) नागरिक का सृजन करता है और सांस्कृतिक समुदायों की पहचान को भी सुरक्षित करने का यत्न करता है। प्रायः, यद्यपि, सामुदायिक अधिकार कुछ वर्षों के नागरिकता अधिकारों को वस्तुतः सीमित कर सकते हैं, मुख्यतः महिला वर्ग के। वैयक्तिक नागरिकों के विशेष संदर्भ (जाति, वर्ग, लिंग आदि) महती रूप से सीमा-शर्त वहीं तक रखते हैं जहाँ तक कि अधिकारों का लोगों द्वारा उपभोग किया जा सकता है। नागरिकता, बहरहाल, कोई निश्चल श्रेणी नहीं है और ऐसे विविध तरीके हैं जिनसे इन अधिकारों के कार्य-क्षेत्र और सार्थकता को, लोकप्रचलित/ वैयक्तिक पहल और संघर्ष के माध्यम से अथवा न्यायालयों और जन-शिकायतों को समझने वाली संस्थाओं की शरण लेकर, बढ़ावा दिया जा सकता है।

8.7 शब्दावली

अधिवास	:	अधिवास सामान्यतः किसी व्यक्ति के आमतौर पर एक स्थायी और कानूनी रूप से मान्य निवास को इंगित करता है। संविधान अधिवास की परिभाषा नहीं दी गई है। सन् 1966 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय (मौ. रज़ा बनाम बम्बई राज्य, ए.आई.आर, 1966, एम.पी. 1436) से एक कानून पास हुआ कि एक स्थायी निवास और वहाँ रहने की मन्शा निश्चित रूप से अधिवास के दो प्रमुख संघटक हैं।
आरोपात्मक	:	वह पदानुक्रम जो असमानता के पिरैमिडी तंत्र को इंगित करता है – यानी ऊर्ध्वाकार रूप से संगठित ढाँचा – जहाँ शीर्षस्थ शेष पर प्रभुत्व रखते हैं। आरोपात्मक पदानुक्रम उन व्यवस्थाओं के संदर्भ में आता है जहाँ जन्म-पदस्थितियाँ लोगों के पदानुक्रमिक संगठन को निर्धारित करती हैं। जाति-व्यवस्था आरोपात्मक पदानुक्रम का एक उदाहरण है।
जनपद	:	प्राचीन भारत में लोगों के भू-भागीय रूप से निर्धारित वे समुदाय जो न जाति, बोली, सामाजिक प्रथाएँ, भौगोलीय स्थिति और सामाजिक-राजनीतिक पदस्थिति के आधार पर विकसित हुए थे। पुराणिक स्रोतों के अनुसार, सात क्षेत्रों में छितरे 165 जनपद प्राचीन भारत में अस्तित्व में थे।
नागरिक	:	नागरिक उस राजनीतिक समुदाय के पूर्ण और समाज सदस्य हैं, जोकि वर्तमान राजनीतिक तंत्र के प्रबल भूमण्डलीय रूप से राष्ट्र-राज्य है।
नागरिकता	:	अन्योन्य अधिकारों, कर्तव्य के बंधनों पर आधारित व्यक्ति और राज्य के बीच एक संबंध।
न जाति	:	न जाति सामान्यतः मूल्यों व परम्पराओं को अपने में समेटती एक विभेद्य सांस्कृतिक पहचान के रूप में समझी जाती है। इसमें किसी जनसमुदाय, सांस्कृतिक समूहों अथवा भू-भागीय क्षेत्र के प्रति निष्ठा का मनोभाव शामिल होता है।
प्रजाति	:	वैज्ञानिक और राजनैतिक रूप से विवादित एक श्रेणी, प्रजाति का तात्पर्य उन जैविक (आनुवंशिक) प्रभेदों से है जो तथाकथित रूप से लोगों के एक समूह को दूसरे से भिन्न करते हैं। काफी समय से, लोगों के बीच सांस्कृतिक भिन्नताओं, और सभ्यतापरक

निकृष्टता और कुछ के मुकाबले पिछड़ापन व दूसरों के मुकाबले उत्कृष्टता की व्याख्या करने के लिए प्रजाति का प्रयोग किया जाता रहा है।

- प्रस्तावना (संविधान के प्रति)** : एक दस्तावेज़ जो उन आदर्शों, लक्षणों व उद्देश्यों को निर्दिष्ट करता है जिनको संविधान-निर्माता संविधान के माध्यम से साकार करने की आकांक्षा रखते थे।
- भूमण्डलीय** : इसका तात्पर्य उन स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय घटनाओं, प्रक्रियाओं व निर्णयों के बीच अन्तर्सम्बन्धों के जाल/ अन्योन्याश्रिता से है जो विश्व भर में व्यक्तियों के जीवन को अनुकूल बनाता है।
- मताधिकार** : वोट देने, अथवा उस अधिकार को प्रयोग करने का अधिकार।
- राजनीतिक समुदाय** : एक राजनीतिक समुदाय अपने भीतर सांस्कृतिक/ भावप्रबल पहचान की अपेक्षा राजनीतिक अनुषक्तियों और नागरिक निष्ठाओं पर जोर देता है। नागरिकता को प्रायः इस अनुषक्ति के आविर्भाव के रूप में देखा गया है जो लोगों को नागरिकों के रूप में एक साझा पहचान में जोड़ता है।
- लिंग** : उस लिंग से भिन्न जो जैविक भेद को इंगित करता है, यहाँ लिंग का अभिप्राय पुरुषों और महिलाओं के बीच सामाजिक और सांस्कृतिक भेद से है। नारी अधिकारवादियों के अनुसार, लिंग भेद तब किया जाता है जब जैविक भेद महिलाओं के लिए भिन्न, पराश्रित और वशवर्ती सामाजिक भूमिकाओं और दशाओं हेतु आधार बन जाते हैं।
- विभेदीय नागरिकता** : यह संकल्पना निश्चित (सांस्कृतिक) समूहों के सदस्यों के न सिर्फ व्यक्तियों के रूप में बल्कि समूहों के सदस्यों के रूप में भी समावेश की वकालत करती है, जबकि उनके अधिकार अंशतः उनकी विशेष जरूरतों को समझती इस समूह-सदस्यता पर निर्भर करते हैं।
- समुदाय** : साहचार्य, निष्ठा, कर्तव्य के बंधनों पर आधारित एक सशक्त सामूहिक पहचान के साथ-साथ भावनात्मकता और बंधता के बंधनों द्वारा पहचाना जाने वाला एक लोक-संग्रह अथवा सामाजिक समूह।

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कश्यप, सुभाष, सिटीज़न्स एण्ड दि कॉन्सटीट्यूशन, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली, 1997

जयाल, नीरजा गोपाल, डिमोक्रेसी एण्ड दि स्टेट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1999 (अध्याय-4, खण्ड-IV : सिटीज़नशिप इन दि नर्मदा वैली)।

बसु, डी.डी., इण्ट्रोडक्शन टु दि कॉन्सटीट्यूशन ऑव इण्डिया, वधवा एण्ड कम्पनी, नागपुर, नवीनतम संस्करण (सिटीज़नशिप, फण्डामेण्टल राइट्स और डायरेक्टिव प्रिंसिपल्स से संबंधित अध्याय)।

देसाई ए.आर., आभा अवस्थी सं० सोशल एण्ड कल्चरल डाइवर्सिटीज़, डी.पी. मुकर्जी इन मैमारियम में 'इम्पॉवरिंग दि सॅवरेन सिटीज़न ऑव इण्डिया : सम कन्सटीट्यूशनल ऑब्स्टैकल्स' रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1997।

महाजन, गुरप्रीत, आइडेण्टिटीज़ एण्ड राइट्स, एस्पैक्ट्स ऑव लिबरल डिमोक्रेसी इन इण्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998, (अध्याय : इण्ट्रोडक्शन : निगोशिएटिंग डिफरेंसिज़ विद्इन लिबरैलिज़्म)।

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) • शासन करने तथा शासित होने की क्षमता।
• "स्वतंत्र एवं स्वायत्त व्यक्ति" जिसको निर्णय-निर्माण में हिस्सा लेने का हक हो।
- 2) ऐसे प्रवाविधान देकर जो व्यक्तियों के अधिकारों के साथ-साथ विशेष धार्मिक एवं सांस्कृतिक समुदायों के अधिकारों की भी रक्षा करें।
- 3) राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत।

बोध प्रश्न 2

- 1) नागरिकों के अधिकार, विशेषकर समाज के कमजोर वर्गों के, ठीक प्रकार से सुरक्षित नहीं होते हैं।
- 2) वे महिलाओं एवं अन्य नागरिकों के अधिकारों से सम्बन्धित विषयों को विभिन्न तरीकों जैसे जनहित याचिका वादों एवं सामाजिक कार्यवाही वादों द्वारा उठाते हैं।